लोक-कल्याणकारी राज्य
(WELFARE STATE)

वास्तव में, लोक-कल्याणकारी राज्य का आशय किसी ऐसी व्यवस्था से नहीं है जो किसी राजनीतिक दर्शन से बँधी हुई हो वरन् एक ऐसी व्यवस्था से है जिससे अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख-सुविधाएँ प्राप्त हों। आज लोक-कल्याणकारी राज्य की विचारधारा को विश्व के सभी देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं। स्थिति यह है कि प्रत्येक देश चाहे वह पूँजीवादी हो या समाजवादी या साम्यवादी अथवा अन्य और कोई, सभी लोक-कल्याणकारी राज्य होने का दावा करते हैं। उनके शासन का स्वरूप चाहे जैसा भी हो किन्तु वे सभी अपने-अपने लोक-कल्याणकारी स्वरूप को प्रकट करने हेतु तर्क प्रस्तुत करते हैं किन्तु हम लोक-कल्याणकारी राज्य उसे ही मानते हैं जो अधिकतम लोगों का अधिकतम हित सम्पन्न करने के साथ-साथ सुख एवं समृद्धि का सृजन करता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य का अर्थ (Meaning of Welfare State)—राज्य अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सुरक्षा, आन्तरिक व्यवस्था, शान्ति स्थापना, न्याय संचालन एवं मुद्रा व्यवस्था के कार्यों को अनिवार्य रूप से सम्पादित करता है। इनके अतिरिक्त नागरिकों की भलाई, सुख और समृद्धि के अनेक कार्य वह करता है। अब प्रश्न यह है कि जब इन कार्यों के बलबूते पर राज्य कल्याणकारी होने का दावा प्रस्तुत करता है तो हम इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचें कि कौन-से राज्य का शासन उतना लोक-कल्याणकारी है अथवा नहीं जितना वह दावा

करता है। इस हेतु यह कहना सर्वथा उचित होगा कि वह राज्य शासन सर्वाधिक लोक-कल्याणकारी होता है जो राज्य के अनिवार्य कार्यों के अतिरिक्त अपने नागरिकों के हित में सर्वाधिक ऐच्छिक कार्य सम्पादित करता है तथा उनकी भलाई, सुख-समृद्धि, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन की उन्नति का सर्वाधिक ध्यान रखता है। स्पष्ट है कि लोक-हितकारी राज्य वह है जो अपने नागरिकों की अधिकतम भलाई करे।

लोक-कल्याणकारी राज्य की परिभाषाएँ (Definitions of Welfare State)—कल्याणकारी राज्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नांकित हैं—

(i) **टी. डब्ल्यू. कैन्ट** के अनुसार, **''लोक-कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो अपने नागरिकों के लिए दूरगामी सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करता है।''**

(ii) **प्रो. लास्की** के अनुसार, **''कल्याणकारी राज्य लोगों का वह संगठन है जिसमें कि सबका सामूहिक रूप से हित हो सके।''**

(iii) **डॉ. आशीर्वादम** के अनुसार, **''लोक-कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो सामान्य कार्यों के अलावा लोक-कल्याण के कार्य को भी करता है, जैसे—सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य, बुढ़ापे की पेंशन, बेकारी निवारण, बीमे की योजनाएँ आदि सुरक्षात्मक कार्य।''**

(iv) **होब्समेन** के अनुसार, **''लोक-कल्याणकारी राज्य दो अतिवादी राजनीतिक दर्शन के मध्य एक समझौता है जिसके एक ओर साम्यवाद और दूसरी ओर अनियन्त्रित व्यक्तिवाद है।''**

(v) **डॉ. अब्राहम** के अनुसार, **''लोक-कल्याणकारी राज्य वह है जो अपनी आर्थिक व्यवस्था का संचालन आय के अधिकाधिक समान वितरण के उद्देश्य से करता है।''**

(vi) **पं. जवाहरलाल नेहरू** के अनुसार, **''लोक-कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो सबके लिए समान अवसर प्रदान करता है। धनवानों व निर्धनों के बीच अन्तर को मिटाता है तथा लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाकर उनके सुख और समृद्धि की ऐसी व्यवस्था करे जिससे अधिकांश लोग सुख एवं शान्ति का अनुभव करें।''**

लोक-कल्याणकारी राज्य की परम्परा (Tradition of Welfare State)—लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा को आधुनिक युग की ही धारणा मानना सही नहीं है। ऐसी धारणा विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अति प्राचीन काल से समय-समय पर सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों में पायी जाती थी। प्राचीन भारत में राजा को 'प्रजा पालक' कहा जाता था। राजा या राज्य का प्रमुख कार्य 'प्रजा रंजन' था। रामायण में वर्णित राज्य व्यवस्था के लोक-कल्याणकारी स्वरूप से प्रभावित होकर गाँधी जी ने जिस राम-राज्य की कल्पना की थी, वह लोक-कल्याणकारी राज्य का ही स्वप्न था। मौर्य सम्राट अशोक द्वारा स्थापित राज्य व्यवस्था भी ऐसा ही दृष्टान्त प्रस्तुत करती है। प्राचीन यूनानी दार्शनिकों—प्लेटो तथा अरस्तू के विचारों के राज्य का आदर्श समस्त जनता को सुखी तथा उत्तम जीवन उपलब्ध कराना था। यह राज्य द्वारा लोक-कल्याणकारी आदर्श अपना कर ही सम्भव हो पाता था। मध्य युग के अनेक राजतन्त्रों (पाश्चात्य एवं पौर्वात्य) ने भी जन-कल्याण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था। इंग्लैण्ड के उपयोगितावादी तथा उदार आदर्शवादी चिन्तकों ने राज्य के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत **'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख'** तथा **'उत्तम जीवन के मार्ग में आने वाली बाधाओं का बाधक बनने'** की जिन धारणाओं को व्यक्त किया था, वे स्पष्टत: राज्य के लोक-कल्याणकारी स्वरूप की मान्यता को प्रदर्शित करती हैं। आधुनिक युग के निरंकुश एवं अधिनायकवादी राज्य भी अपनी नीतियों तथा क्रिया-कलापों को जन-कल्याणकारी उद्देश्यों पर आधारित होने का दावा करते रहते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राज्य के कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा को सिद्धान्तत: सदैव सर्वोत्तम आदर्श माना जाता रहा है, भले ही समय-समय पर अनेक राज्य इस आदर्श की प्राप्ति में सफल न रहे हों।

आधुनिक युग में इस धारणा के अभ्युदय के कारण—प्राचीन तथा मध्य युग में राज्य के लोक-कल्याणकारी आदर्श का स्वरूप सिद्धान्त तथा व्यवहार में जो भी रहा हो, वर्तमान में इस धारणा के अभ्युदय के कुछ विशिष्ट कारण हैं जिन्हें निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) **व्यक्तिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया**—उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य देशों में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति तथा विचारधारा के प्रभाव से राज्य के कार्य-क्षेत्र को सीमित रखने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि आर्थिक क्षेत्र में उन्मुक्त प्रतियोगिता बढ़ने लगी है। इसके फलस्वरूप पूँजीवाद को बढ़ावा मिला है, बड़े-बड़े

पूँजीपति राज्य पर हावी होने लगे हैं, श्रमिकों तथा निर्बल वर्गों का शोषण होने लगा है तथा पूँजीवाद ने उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया है। परिणामस्वरूप उपनिवेशों में भी साम्राज्यवादी शोषण फैल गया है। इस व्यक्तिवादी प्रभाव के विरुद्ध वैचारिक एवं सामाजिक-राजनीतिक दोनों स्तरों पर प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। इन विचारों तथा आन्दोलनों का उद्देश्य शोषण-विहीन तथा जन-हितकारी व्यवस्थाओं की स्थापना का प्रचार-प्रसार था।

(2) **समाजवादी विचारों तथा आन्दोलनों का अभ्युदय**—व्यक्तिवादी सामाजिकता-विहीन तथा शोषण-जन्य प्रवृत्तियों और विचारधारा के विरुद्ध तुरन्त प्रतिक्रिया आरम्भ होने लगी। आरम्भ में स्वप्नलोकी समाजवादी विचार व्यक्त किये जाने लगे परन्तु शोषणकारी प्रभुत्व से मुक्ति हेतु वे अपर्याप्त थे। कार्ल मार्क्स के क्रान्तिकारी समाजवादी विचारों तथा सोवियत रूस में लेनिन के नेतृत्व में हुई सफल क्रान्ति ने व्यक्तिवादी पुलिस राज्य के विरुद्ध एक सशक्त मोर्चे को खड़ा कर दिया था। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य सर्वहारा वर्ग का कल्याण करना था जो समाज में एक विशाल वर्ग का निर्माण करता है। राज्य की प्रभुत्व शक्ति को इस वर्ग के अधिनायकत्व में रखने के दो उद्देश्य थे—(1) पूँजीवाद का विनाश एवं (2) जन-साधारण का कल्याण। मार्क्सवाद से प्रेरित साम्यवादी विचार तथा आन्दोलन धीरे-धीरे विश्व के अन्य देशों में भी विकसित होने लगे। इनके क्रान्तिकारी स्वरूप से सहमति न रखने वाले किन्तु समाजवाद के मूल सिद्धान्तों पर आस्था रखने वाले लोगों ने मार्क्सवादी समाजवादी कार्यक्रम को संशोधित रूप से प्रस्तुत करके विकासवादी समाजवाद या राज्य समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार करना शुरू किया। स्वयं पूँजीवादी राज्यों में भी राज्य के माध्यम से शोषणकारी व्यवस्थाओं का अन्त करके जन-कल्याणकारी कार्यक्रमों को लागू करने के आन्दोलन चलने लगे। साम्यवादी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत तो लोक-कल्याण को सुनिश्चित करने वाले कार्यक्रमों को राज्य का संवैधानिक दायित्व घोषित किया गया है।

(3) **लोकतन्त्र का विकास**—समाजवादी आन्दोलनों से पूर्व पाश्चात्य देशों की राज्य-व्यवस्थाओं के अन्तर्गत उदारवादी लोकतन्त्र विकसित हुए थे। इनके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की धारणा को विशेष महत्व दिया जाता था किन्तु राज्य का उद्देश्य राजनीतिक स्वतन्त्रता अधिक थी, न कि आर्थिक स्वतन्त्रता। आर्थिक स्वतन्त्रता बिना समानता की धारणा को कार्यान्वित किये सम्भव नहीं हो सकती। अतएव समाजवाद के बढ़ते प्रभाव ने समानता को लोकतन्त्र के निमित्त अधिक महत्व देना आरम्भ किया। लोकतन्त्र में शासन जनशक्ति के अधीन रहता है। अत: जो सरकार जन-कल्याण तथा जन-हितों को उपेक्षित रखती है, उसे लोकतन्त्र में बने रहने की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। यही कारण है कि वर्तमान में स्वयं पूँजीवादी राज्य व्यवस्थाओं की शासन सत्ताएँ भी लोक-कल्याणकारी आदर्शों तथा कार्यक्रमों को अपनाने की दिशा में प्रवृत्त होती जा रही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में जो पूँजीवादी राज्य-व्यवस्था का सर्वोत्तम दृष्टान्त है, न्यू-डील व्यवस्थापन इस धारणा को प्रदर्शित करते हैं, इंग्लैण्ड का मजदूर दल राज्य समाजवादी है अत: जब कभी वह सत्ताधारी होता है, वह अधिकाधिक मात्रा में लोक-कल्याणकारी तथा समाजवादी नीतियों को लागू करने का प्रयास करता है। स्वतन्त्र भारत के संविधान के अन्तर्गत लोकतन्त्र तथा समाजवाद को राज्य के आधारभूत सिद्धान्त संविधान की प्रस्तावना में घोषित किया गया है और संविधान के भाग 4 में निर्दिष्ट राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत राज्य के लोक-कल्याणकारी स्वरूप की घोषणा की गयी है।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास**—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के व्यापक विस्तार के फलस्वरूप विश्व के विभिन्न भागों के जन-मानस की राजनीतिक चेतना का पर्याप्त विकास हुआ है। साम्राज्यवादी प्रतियोगिता ने भयानक विश्वयुद्धों का मार्ग प्रशस्त किया था। उपनिवेशों की जनता इन स्वार्थी साम्राज्यवादी शक्तियों से राजनीतिक मुक्ति चाह रही थी क्योंकि साम्राज्यवादी आधिपत्य के अन्तर्गत उपनिवेशों की जनता के विकास तथा कल्याण को सदैव उपेक्षित रखा गया था। जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी शक्तियाँ स्वयं निर्बल पड़ गयीं तो वे उपनिवेशों में अपनी सत्ता बनाये रखने की स्थिति में नहीं रहीं। अत: उन्हें उपनिवेशों को स्वतन्त्र करना पड़ा। इन स्वतन्त्र हो गये राष्ट्रों को जहाँ अपने विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहचर आवश्यक प्रतीत हुआ, वहीं दूसरी ओर, उन्हें अपने को यथासम्भव आत्म-निर्भर बने रहने की दिशा में विकसित करने की प्रेरणा भी प्राप्त हुई। इस हेतु राज्यों की आर्थिक समृद्धि आवश्यक थी। अत: राज्य ऐसी योजनाएँ बनाने लगे जिनके द्वारा जनता भौतिक उत्पादन बढ़ाकर जनता की खुशहाली को सुनिश्चित कर सके और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने निर्यात को भी बढ़ा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसके विभिन्न अभिकरण जन-कल्याण की अनेक नीतियों का प्रचार-प्रसार करते रहते हैं और राज्यों को जन-हितकारी योजनाएँ लागू करने के लिए ऋण या सहायता देते रहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में समृद्ध राष्ट्र भी पिछड़े राज्यों को सहायता देते रहते हैं, ताकि निर्बल राष्ट्र अधिकाधिक जन सेवा कर सकें।

लोक-कल्याणकारी राज्य में राज्य के कार्यों का वर्गीकरण (Classification of State's Functions in Welfare State)

लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा के विकास के फलस्वरूप राज्य के कार्यों को अनिवार्य तथा ऐच्छिक दो श्रेणियों में वर्गीकृत करने की परम्परा निर्मूल हो गयी है। अब राज्य के कार्यों को निम्नांकित क्रम से वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) **आत्म-रक्षा सम्बन्धी कार्य**—इसके अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो राज्य की प्रभुसत्ता तथा अखण्डता को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। इनके अन्तर्गत बाह्य आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरक्षा हेतु सैनिक व्यवस्था करना, राज्य के आन्तरिक शत्रुओं को दबाने तथा राज्य में आन्तरिक शक्ति तथा व्यवस्था हेतु पुलिस की व्यवस्था करना, गृहयुद्ध की-सी स्थिति आ जाने पर सेना की सहायता लेना आदि शामिल हैं। प्रतिरक्षात्मक कार्यों के लिए कभी-कभी राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्य राज्यों से भी सहायता या शस्त्रास्त्रों की व्यवस्था करनी पड़ती है। कभी-कभी संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् का आश्रय लेना पड़ता है जो अचानक दूसरे राष्ट्र द्वारा आक्रमण किये जाने की स्थिति में युद्ध विराम तथा अन्य कार्यवाही द्वारा राष्ट्रों को युद्ध का सहारा लेने से रोकने की व्यवस्था कराता है। ये कार्य ऐसे हैं जिन्हें कभी राज्य के अनिवार्य कार्यों की श्रेणी में रखा जाता था।

(2) **सार्वजनिक विधि तथा न्याय व्यवस्था**—यों तो प्रभुत्व सम्पन्न राज्य सामान्य जनता के जीवन की समस्त व्यवस्थाओं का एकमात्र विधि निर्माता तथा विधि के परिपालन हेतु न्याय व्यवस्था का एकमात्र अभिकर्ता होता है और राज्य के इस कार्य को भी अनिवार्य कार्यों की श्रेणी में रखा जाता है किन्तु एक लोक-कल्याणकारी राज्य में विधि का स्रोत एकमात्र राज्य के आदेशों को मानना राज्य की निरंकुशता का द्योतक होता है। राज्य को जन-परम्पराओं, समुदायगत परम्पराओं, धार्मिक आस्थाओं आदि को भी यथोचित सम्मान देकर विधि निर्माण करना चाहिए। विधि का आधार समानता तथा स्वतन्त्रता दोनों होनी चाहिए। विधि के समुचित परिपालन हेतु लोचपूर्ण न्याय व्यवस्था होनी चाहिए। न्याय समस्त जनता को सुलभ, सरल तथा तत्काल मिलना चाहिए। न्याय में विलम्ब न्याय न होने के तुल्य है। न्याय अत्यधिक व्ययसाध्य तथा जटिल प्रक्रिया से युक्त नहीं होना चाहिए। अतः लोक-कल्याणकारी राज्य को जन-न्यायालयों तथा पंचायती न्यायालयों की व्यवस्था करनी चाहिए।

(3) **प्रशासनिक कार्य**—राज्य की इच्छा को कार्यान्वित करना राज्य की सरकार का दायित्व है। इसके अन्तर्गत विधि व्यवस्था तथा न्याय व्यवस्था सरकार के विधायी तथा न्यायिक अंगों द्वारा की जाती है। सरकार के कार्यपालिका अंग को ही सामान्यतः सरकार कहा जाता है। इस अंग का कार्य व्यापक होता है। राज्य की प्रधान कार्यपालिका के अधीन एक विशाल तथा जटिल प्रकृति का संगठन राज्य के प्रशासनिक कार्यों में निरन्तर कार्यरत रहता है। इस संगठन में कार्यरत अधिकारियों तथा कर्मचारियों की नियुक्ति, उनकी सेवा शर्तों का निर्धारण, उनके वेतन-भत्तों, दायित्वों आदि की स्पष्ट व्याख्या राज्य के कानूनों द्वारा की जाती है। पुलिस राज्य की धारणा के अन्तर्गत यह संगठन नौकरशाही तन्त्र की भाँति कार्यरत रहता था किन्तु लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा के अन्तर्गत इसे लोक सेवा कहा जाता है। इस संगठन में कार्यरत अधिकारियों तथा कर्मचारियों की ईमानदारी, जन-सेवा के प्रति निष्ठा, अपने दायित्वों को दक्षता से सम्पन्न करने की क्षमता, उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से कार्य करने की प्रवृत्ति, जन-आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं के प्रति उत्तरापेक्षिता आदि गुणों पर लोक-कल्याण निर्भर रहता है। अतः राज्य को ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए जिसमें उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हों। न्याय की भाँति प्रशासनतन्त्र से प्राप्त होने वाली सुविधाओं में भी विलम्ब जन-कल्याण के विरुद्ध एक अभिशाप है। स्वच्छ तथा चुस्त प्रशासन लोक-कल्याणकारी राज्य का सबसे उत्तम लक्षण है।

(4) **नियोजन सम्बन्धी कार्य**—लोक-कल्याण के कोई भी कार्य बिना समुचित नियोजन के सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकते। नियोजन का आशय यह है कि जनहित के कार्यों के सम्बन्ध में एक निश्चित अवधि के लिए पूर्ण योजना बना ली जाय। उसमें वरीयता क्रम को निर्धारित करके प्रत्येक कार्य के लिए लक्ष्य निर्धारित कर दिये जायें। उन्हें पूर्ण करने के लिए वित्तीय एवं अन्य साधनों को सुनिश्चित कर लिया जाय। जो प्रशासनिक संगठन इन कार्यों के लिए अपेक्षित हो, उसे समुचित प्रशिक्षण दिया जाय। यों तो राज्य द्वारा सम्पादित किये जाने वाले सभी क्रिया-कलापों के लिए नियोजन आवश्यक होता है और राज्य के सामान्य कार्यों के लिए ऐसी व्यवस्था सभी राज्य करते हैं, तथापि लोक-कल्याणकारी आदर्श की प्राप्ति हेतु कुछ विशिष्ट योजनाएँ समयबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत तैयार करनी पड़ती हैं। समाजवादी राज्यों में ऐसा नियोजन पाँच या सातवर्षीय योजनाओं का निर्माण

करके उन्हें कार्यान्वित करने की परम्परा अपनायी जाती रही है। भारत में सन् 1951 से ऐसी व्यवस्था पंचवर्षीय योजनाओं की पद्धति द्वारा की जाती रही है।

(5) **सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्य**—सामाजिक सुरक्षा का आशय राज्य की आन्तरिक सुरक्षा तथा शान्ति व्यवस्था नहीं है। ऐसा तो सभी राज्यों को आत्म-रक्षा हेतु करना ही पड़ता है किन्तु लोक-कल्याणकारी राज्य में समाज का यह दायित्व है कि वह अपनी सत्ता के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अकाल, महामारी, अन्य दैवी प्रकोपों, बीमारी, अपंगता, वृद्धावस्था, असामयिक आपात् आदि के दुष्परिणामों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जन-स्वास्थ्य, चिकित्सा, वृद्धावस्था पेंशन, काम की स्वच्छ परिस्थितियों का सृजन, असहायों के लिए आवास व्यवस्था, अपंग हो जाने की स्थिति में जीविका हेतु भत्तों की व्यवस्था, महिलाओं के लिए प्रसूति गृहों की व्यवस्था, काम-काजी महिलाओं के लिए प्रसवकालीन अवकाश की व्यवस्था, श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिए काम के घण्टों का निर्धारण, बँधुआ मजदूर व्यवस्था की समाप्ति आदि कार्य राज्यो को करने पड़ते हैं। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि समाज तथा राज्यों के लिए एक भीषण समस्या बनती जा रही है। इसके कारण समाज की सुरक्षा को सुनिश्चित करना कठिन हो गया है। अतएव जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाना भी लोक-कल्याण की एक आवश्यक स्थिति बन गयी है। परिवार कल्याण योजनाएँ इस दिशा में आवश्यक कदम हैं।

(6) **अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण**—जन-व्यवस्था की एक आवश्यक शर्त यह है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ (भोजन, वस्त्र तथा आवास) सरलता से प्राप्त हो सकें। इसके लिए राज्य को बेरोजगारी का अन्त करना, रोजगार में लगे व्यक्तियों को समुचित वेतन दिया जाना, रोजगार की सुरक्षा तथा न्यूनतम वेतन की गारण्टी की व्यवस्था करनी पड़ती है। राज्य में अर्थव्यवस्था का नियमन इस रूप में होना चाहिए कि रोजगार में न्यूनतम तथा अधिकतम वेतन के बीच भारी अन्तर न रहे। समाज में उत्पादन के भौतिक साधनों का वितरण इस प्रकार न हो कि वे थोड़े-से व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जायें और समाज का विशाल अंग उनसे वंचित रहे। अर्थव्यवस्था का संचालन तथा नियमन यह सुनिश्चित करे कि अमीर अधिक धनी और गरीब अधिक निर्धन न होते जायें। उत्पादन तथा वितरण व्यवस्था सम्पूर्ण समाज के व्यापक हितों के परिप्रेक्ष्य में संचालित होनी चाहिए।

समाज की अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि भारी तथा कुटीर दोनों क्षेत्रों में व्यापक औद्योगीकरण होना चाहिए। इससे बेरोजगारी का अन्त करने तथा उत्पादन में वृद्धि होने से सब लोगों की आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकेंगी और सम्पूर्ण समाज आर्थिक आत्म-निर्भरता का लाभ उठा सकेगा। राज्य को आयात-निर्यात का नियमन इस रूप में करना पड़ेगा कि उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों का मुँह न ताकना पड़े। राज्य में खाद्य पदार्थों के अधिकाधिक उत्पादन की व्यवस्था आवश्यक है। राज्य को जन-स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पदार्थों के उत्पादन तथा उपभोग को निरुत्साहित करना चाहिए।

(7) **सार्वजनिक सुविधाओं की व्यवस्था**—व्यक्ति एवं समाज के जीवन को सुखी, सुसंस्कृत, सभ्य तथा सुगम बनाना भी राज्य का जन-हितकारी दायित्व है। सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन की श्रेष्ठता के लिए अनेक प्रकार की ऐसी सुविधाएँ आवश्यक हैं जिन्हें व्यक्ति या छोटा-सा व्यक्ति-समूह अपने लिए नहीं जुटा सकता। इनके अन्तर्गत यातायात तथा परिवहन, संचार साधन, सड़कों तथा पुलों का निर्माण, सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण आदि शामिल हैं। वर्तमान में जीवन को सुविधाजनक बनाने तथा आराम से व्यतीत करने के लिए नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों ने अनेक साधनों की खोज की है। राज्य ही ऐसा अभिकरण है जो जनता को ये सभी सुविधाएँ उपलब्ध करा सकता है। शिक्षालयों तथा उच्च शोध संस्थाओं की व्यवस्था, बैंक व्यवस्था, सार्वजनिक बैंकों से विभिन्न रोजगारों के लिए ऋण की व्यवस्था, तकनीकी प्रशिक्षणों की व्यवस्था आदि ऐसी सुविधाएँ हैं जिन्हें राज्य ही जनता को उपलब्ध करा सकता है। जन-कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए इन क्रिया-कलापों का सम्पादन राज्य के लिए आवश्यक है।

(8) **जनता के जीवन स्तर को उच्चतर बनाना**—लोक-कल्याणकारी राज्य का यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। सभ्यता के विकास के आधुनिक युग में प्रत्येक लोकतन्त्री राज्य का यह कर्तव्य है कि वह जीवन के हर क्षेत्र में जनता को जीवन की मौलिक आवश्यकताओं को उपलब्ध कराने से ही सन्तुष्ट न रहे, उसे जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की व्यवस्था भी करनी चाहिए। इस हेतु राज्य की ओर से व्यक्तियों को विविध प्रकार से

सहायता, प्रोत्साहन, प्रशिक्षण आदि देने का प्रयास करना पड़ता है। राष्ट्रीय औसत आय में वृद्धि कराने के लिए राज्य को सदैव जागरूक रहना पड़ता है।

(9) **वैदेशिक सम्बन्ध**—लोक-कल्याणकारी राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय जगत का आदर्श शान्ति तथा सहयोग की नीतियाँ होना आवश्यक है। युद्धरत या शस्त्रास्त्रों की होड़ तथा संग्रह में लीन राज्य अपनी जनता के कल्याण सम्बन्धी कार्य-कलापों को करने के लिए सक्षम नहीं रह सकता, जब तक कि वह स्वयं अत्यधिक समृद्ध राज्य न हो। इसीलिए राज्य को विदेशों के साथ मैत्री तथा सहयोग की नीति अपनाना आवश्यक है। पड़ोसी राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तो ऐसी नीति सर्वाधिक महत्व रखती है। ईरान तथा इराक ऐसी नीति के अभाव में युद्धरत रहने के कारण स्वयं बरबाद हो रहे हैं। पाकिस्तान के सैनिक शासकों का भारत के विरुद्ध आक्रामक रवैया उन्हें अमेरिका की शरण में शस्त्रास्त्रों के संग्रह हेतु जाने की प्रेरणा देता रहा है। इस छोटे-से तथा आर्थिक दृष्टि से अविकसित राज्य का इतने व्यापक पैमाने पर शस्त्र संग्रह किया जाना इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि जन-कल्याणकारी कार्यों के लिए उसके साधन नहीं के बराबर रह जायेंगे। किसी भी राज्य को पड़ोसी या बाहरी राष्ट्रों के साथ मैत्री सम्बन्ध अच्छे बनाये रखने पर आक्रमण का खतरा नहीं रह सकता। अत: प्रतिरक्षात्मक कार्यों में फालतू व्यय को रोककर वह लोक-कल्याणकारी कृत्यों में अपने साधन प्रयुक्त कर सकता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रतिरक्षात्मक कार्य उपेक्षित रखे जायें। कदाचित कोई अन्य राष्ट्र धोखा दे सकता है जैसा कि 1962 में चीन ने भारत के साथ किया था।

(10) **राजनीतिक कार्य**—लोकतन्त्र तथा लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लोकतन्त्र जनता की राजनीतिक चेतना का विकास तथा विस्तार करता है। राज्य के लोक-कल्याणकारी आदर्श जनता में राज्य के प्रति विश्वास तथा निष्ठा की अभिवृद्धि करने में सहायता देते हैं। अत: राज्य को जनता के मौलिक अधिकारों की घोषणा करनी चाहिए तथा उनकी सुरक्षा की गारण्टी देनी चाहिए। राज्य की सरकार को विरोधी पक्षों को कुचलने का प्रयास नहीं करना चाहिए बल्कि विचार अभिव्यक्ति की तथा प्रेस की स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित करना चाहिए। ऐसी व्यवस्था स्वयं सरकार के हित की चीज है। इससे सरकार को अपनी भूलों का सुधार करने का लाभ प्राप्त होता है। लोक-कल्याणकारी राज्य को प्रचुर साधनों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें राज्य विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लगाये गये करों से प्राप्त करता है। यदि जनता को यह आभास होता है कि जो कर उस पर लगाये गये हैं, उनसे जन-कल्याणकारी कृत्य राज्य कर रहा है तो जनता करों का विरोध नहीं करती। साथ ही यदि सार्वजनिक वित्त का ईमानदारी से सार्वजनिक हित में ही प्रयोग किये जाने के विषय में जनता आश्वस्त रहती है तो इससे राज्य तथा सरकार के प्रति जन-निष्ठा बनी रहने से राज्य की शक्ति सुदृढ़ बनी रहती है।

लोक-कल्याणकारी राज्य का मूल्यांकन (Evaluation of Welfare State)

वर्तमान में लोक-कल्याणकारी राज्य की धारणा राज्य के कार्य संचालन का सर्वमान्य सिद्धान्त बन गया है। प्राय: सभी देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसे स्वीकार करते हैं। भारत में भी राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में इस बात की स्पष्ट रूप से घोषणा की गयी है कि भारत एक लोक-कल्याणकारी राज्य है।

भारत एवं प्रान्तीय सरकारों ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से भारत के लोक-कल्याणकारी स्वरूप को मूर्त रूप देने का निरन्तर प्रयास किया है तथा इस आदर्श की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु अभी भी आर्थिक सुरक्षा, बेरोजगारी का अन्त, अनिवार्य शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के लक्ष्यों तक पहुँचना एक लम्बी यात्रा है। यद्यपि लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना के प्रयत्न स्तुतीय हैं तथापि इसकी कुछ न्यूनताओं के कारण इस पर आरोप लगाये जाते हैं कि—(i) यह व्यक्तिगत स्वाधीनता को समाप्त कर देती है। (ii) यह ऐच्छिक संगठनों के कार्यों को छीनकर मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करने वाली संस्थाओं को समाप्त कर देती है। (iii) इसमें नौकरशाही का बोलबाला हो जाता है तथा (iv) राज्य पर अनावश्यक व्यय भार बढ़ जाने के कारण यह व्यवस्था बहुत खर्चीली होती है। इसी सन्दर्भ में **सीनेटर टाफ्ट** ने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि **''राज्य की लोक-कल्याणकारी नीति राज्य कोष का दिवाला निकालने के सिवाय और कुछ नहीं है, इससे राज्य की वाह्य एवं आन्तरिक सुरक्षा कमजोर पड़ जाती है।''** किन्तु उक्त विचार पूर्वाग्रहों से ग्रसित है। लोक-कल्याणकारी राज्य एक ऐसी सुन्दर एवं समन्वित शासन व्यवस्था है जिसमें राजकोष का सदुपयोग जनहित में अधिकाधिक सम्भव होता है।